IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आदिगुरु शंकराचार्य की शिक्षाओं में योग : एक अध्ययन

डॉ. तृप्ति उकास
सहायक प्राध्यापक, हिन्दी
प्रधानमंत्री कॉलेज ऑफ एक्सीलेंस
शासकीय महाकोशल स्वशासी अग्रणी महाविद्यालय, जबलपुर, म. प्र.

सारांश

भारतीय दार्शनिक परंपरा में आदिगुरु शंकराचार्य का स्थान अद्वितीय एवं सर्वोपरि है। उन्होंने केवल अद्वैत वेदांत के सिद्धांत का प्रतिपादन ही नहीं किया, बल्कि भारतीय आध्यात्मिक चेतना को पुनर्जीवित करने का ऐतिहासिक कार्य भी किया। शंकराचार्य ऐसे समय में प्रकट हुए जब वैदिक धर्म कर्मकाण्ड, सांप्रदायिक विभाजन और दार्शनिक भ्रमों में उलझ चुका था। उन्होंने उपनिषदों, भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र की नवीन व्याख्या प्रस्तुत कर आत्मज्ञान को मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य घोषित किया। उनके अनुसार योग आत्मा और ब्रह्म के अभिन्न संबंध की अनुभूति का साधन है।

आदिगुरु शंकराचार्य का योग-दर्शन ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और आत्मचिंतन पर आधारित है। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि मनुष्य का वास्तविक स्वरूप शरीर अथवा मन नहीं, बल्कि शुद्ध चेतना है। यही चेतना ब्रह्म है और इसी की अनुभूति मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती है। शंकराचार्य ने भारतीय संस्कृति में समन्वय की भावना को स्थापित करते हुए विभिन्न संप्रदायों के मध्य एकता का संदेश दिया। उनके द्वारा स्थापित चार मठ भारतीय सांस्कृतिक एकता के स्थायी प्रतीक हैं।

बीज शब्द

आदिगुरु शंकराचार्य, योग, अद्वैत वेदांत, आत्मज्ञान, ब्रह्म, माया, ध्यान, मोक्ष, भारतीय दर्शन, चेतना।

प्रस्तावना

भारतीय संस्कृति का मूल स्वर अध्यात्म है। यहाँ दर्शन केवल बौद्धिक चिंतन नहीं, बल्कि जीवन की अनुभूति और आत्मसाक्षात्कार की प्रक्रिया है। वेद, उपनिषद, भगवद्गीता और योगशास्त्र ने मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य को आत्मज्ञान तथा मोक्ष के रूप में स्वीकार किया है। भारतीय दार्शनिक परंपरा में अनेक आचार्यों ने अपने-अपने विचारों से इस आध्यात्मिक धारा को समृद्ध किया, किंतु आदिगुरु शंकराचार्य का स्थान उनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

आदिगुरु शंकराचार्य का जन्म 788 ईस्वी में केरल के कालड़ी ग्राम में हुआ माना जाता है। वे नंबूदरी ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुए। बाल्यावस्था से ही उनमें असाधारण प्रतिभा के लक्षण दिखाई देने लगे थे। कहा जाता है कि अल्पायु में ही उन्होंने वेद, उपनिषद और दर्शनशास्त्रों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था। उनके पिता शिवगुरु और माता आर्यांबा धार्मिक प्रवृत्ति के थे। बालक शंकर में वैराग्य की भावना प्रारंभ से ही विद्यमान थी। संन्यास ग्रहण की प्रसिद्ध मगरमच्छ-कथा भारतीय आध्यात्मिक साहित्य में अत्यंत चर्चित है। यह घटना केवल चमत्कार नहीं, बल्कि उनके जीवन के आध्यात्मिक उद्देश्य का प्रतीक है (राधाकृष्णन, पृ. 436)।

शंकराचार्य का समय भारतीय इतिहास में वैचारिक संक्रमण का काल था। बौद्ध धर्म का प्रभाव बढ़ चुका था तथा वैदिक धर्म अनेक कर्मकाण्डों और रूढ़ियों में उलझ गया था। समाज में दार्शनिक मतभेद और सांप्रदायिक विभाजन विद्यमान थे। ऐसी स्थिति में शंकराचार्य ने अद्वैत वेदांत के माध्यम से भारतीय आध्यात्मिक चेतना को पुनः जागृत किया। उन्होंने यह प्रतिपादित किया कि जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है तथा अज्ञान ही संसारिक दुखों का कारण है।

योग भारतीय दर्शन का अभिन्न अंग है। पतंजलि ने योग को "चित्तवृत्ति निरोध" कहा, किंतु शंकराचार्य ने योग को आत्मा और ब्रह्म की एकता का साधन माना। उनके अनुसार ज्ञानयोग ही सर्वोच्च योग है, क्योंकि वही मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार तक पहुँचाता है। उन्होंने ध्यान, वैराग्य, आत्मनिष्ठा और विवेक को योग का आवश्यक आधार माना (दासगुप्ता, पृ. 122)।

वर्तमान समय में जब मानव जीवन भौतिकता, तनाव और मानसिक असंतुलन से ग्रस्त है, तब शंकराचार्य का योग-दर्शन अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है। उनका चिंतन मानव को बाह्य संसार की अस्थिरता से ऊपर उठाकर आत्मिक शांति और सार्वभौमिक चेतना की ओर ले जाता है।

आदिगुरु शंकराचार्य : जीवन, व्यक्तित्व और आध्यात्मिक चेतना

आदिगुरु शंकराचार्य भारतीय इतिहास के महान दार्शनिक, योगी और धर्मसुधारक थे। उनका जीवन असाधारण प्रतिभा और आध्यात्मिक ऊर्जा का अद्भुत उदाहरण है। कहा जाता है कि दो वर्ष की आयु में उन्होंने संस्कृत बोलना प्रारंभ कर दिया था और आठ वर्ष की आयु तक वेदों का अध्ययन पूर्ण कर लिया था।

उनकी आध्यात्मिक प्रतिभा का परिचय उनके संन्यास ग्रहण से ही स्पष्ट हो जाता है। नदी में मगरमच्छ द्वारा पैर पकड़ लेने की घटना भारतीय सांस्कृतिक स्मृति में अत्यंत प्रसिद्ध है। इस घटना के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि उनका जीवन सांसारिक नहीं, बल्कि ईश्वरीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए था।

गुरु गोविंदपाद से दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने अद्वैत वेदांत का गहन अध्ययन किया। उन्होंने संपूर्ण भारत की यात्रा कर अनेक विद्वानों से शास्त्रार्थ किया। मंडन मिश्र के साथ उनका शास्त्रार्थ भारतीय दार्शनिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना माना जाता है। इस संवाद के माध्यम से उन्होंने यह सिद्ध किया कि ज्ञान ही मोक्ष का सर्वोच्च साधन है (शर्मा, पृ. 291)। यदि कुछ जानने योग्य है तो वह ब्रह्म है इसके इतर सब मिथ्या है- "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।" (विवेकचूड़ामणि, कारिका 20)

विवेकचूड़ामणि की यह कारिका शंकराचार्य के समस्त दर्शन का सार प्रस्तुत करती है। उनके अनुसार ब्रह्म ही परम सत्य है, जबकि संसार माया के कारण सत्य प्रतीत होता है लेकिन होता नही। जीव वास्तव में ब्रह्म ही है, किंतु अज्ञान

के कारण स्वयं को शरीर मान बैठता है। यह दार्शनिक अवधारणा गूढ़ सत्य की ओर प्रत्यक्ष गमन है। उनके विचारों दर्शन तत्वों की गहनता उनके प्रकाण्ड विद्वत्व की द्योतक है। उनके ज्ञान की पराकाष्ठा इस शलोक से आभासित होती है-

बन्धमोक्षादयः सर्वे कृताः सत्येऽद्वये त्वयि ।

भातीत्युक्ते जगत्सवै सद्रूपं ब्रह्म तद्भवेत् ॥स्वात्मप्रकाशिका -5॥

हालाँकि उनका व्यक्तित्व केवल दार्शनिक नहीं, बल्कि महान योगी का भी था। उन्होंने आत्मसंयम, ध्यान और वैराग्य को जीवन का आधार माना। उनके जीवन का प्रत्येक कार्य योग की व्यावहारिक अभिव्यक्ति था।

अद्वैत वेदांत और योग का दार्शनिक आधार

शंकराचार्य का दर्शन अद्वैत वेदांत पर आधारित है। अद्वैत का अर्थ है—द्वैत का अभाव। उनके अनुसार जीव और ब्रह्म में कोई वास्तविक भेद नहीं है। यह भेद केवल अविद्या या माया के कारण प्रतीत होता है।

उन्होंने उपनिषदों की व्याख्या करते हुए कहा कि आत्मा शुद्ध, नित्य और अविनाशी है। शरीर और मन परिवर्तनशील हैं, इसलिए वे वास्तविक नहीं हैं। मनुष्य का वास्तविक स्वरूप चेतना है। यही चेतना ब्रह्म है - "अहं ब्रह्मास्मि।" (बृहदारण्यक उपनिषद, 1.4.10)

यह महावाक्य आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता को प्रकट करता है। शंकराचार्य ने इस महावाक्य की व्याख्या करते हुए कहा कि आत्मज्ञान ही मोक्ष का साधन है।

उनके अनुसार योग का उद्देश्य बाह्य जगत से पलायन नहीं, बल्कि आत्मा की वास्तविक पहचान है। ज्ञानयोग के माध्यम से मनुष्य अपने भीतर स्थित ब्रह्मस्वरूप का अनुभव करता है - "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।" (भगवद्गीता, 4/38)

शंकराचार्य ने माना कि, ज्ञान ही मनुष्य को अज्ञान और बंधन से मुक्त करता है। कर्म और उपासना मन की शुद्धि के साधन हैं, किंतु अंतिम मुक्ति केवल ज्ञान से संभव है (गीता भाष्य, अध्याय 4)।

योग की दृष्टि से शंकराचार्य का चिंतन अत्यंत गहन है। उन्होंने मनुष्य को यह समझाया कि वह अपने विचार नहीं है, बल्कि विचारों के पीछे स्थित साक्षी चेतना है। यही दृष्टि आधुनिक मनोविज्ञान और ध्यान पद्धतियों में भी महत्वपूर्ण मानी जाती है।

योग, ध्यान और आत्मसाक्षात्कार

आदिगुरु शंकराचार्य ने ध्यान को आत्मानुभूति का प्रमुख साधन माना। उनके अनुसार मनुष्य के दुखों का मूल कारण 'अविद्या' है। जब तक मनुष्य स्वयं को शरीर और मन के साथ जोड़ता रहेगा, तब तक वह दुखों से मुक्त नहीं हो सकता।

योग का उद्देश्य चित्त की शुद्धि और आत्मस्वरूप की अनुभूति है। पतंजलि ने योग को "चित्तवृत्ति निरोध" कहा है— "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"— पतंजलि योगसूत्र, ½

शंकराचार्य ने इसी सिद्धांत को आत्मज्ञान के साथ जोड़ते हुए कहा कि जब मन शांत हो जाता है, तब आत्मा का वास्तविक स्वरूप प्रकट होता है। उनकी प्रसिद्ध रचना निर्वाणषटकम् आत्मानुभूति का अद्वितीय उदाहरण है— "मनो बुद्ध्यहंकार चित्तानि नाहम्। न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे॥" (निर्वाणषटकम्, श्लोक 1)

अस्तु शंकराचार्य आत्मा को मन, बुद्धि, इंद्रियों और शरीर से परे बताते हैं। यह योग की उच्चतम अवस्था का वर्णन है, जहाँ साधक स्वयं को शुद्ध चेतना के रूप में अनुभव करता है।

ध्यान के माध्यम से मनुष्य वर्तमान क्षण में स्थित होना सीखता है। शंकराचार्य के अनुसार वर्तमान ही वास्तविक है। अतीत और भविष्य की चिंताएँ मनुष्य को दुखी बनाती हैं। योग मनुष्य को जागरूकता और आत्मसंतुलन प्रदान करता है।

शंकराचार्य और भारतीय सांस्कृतिक समन्वय

शंकराचार्य का योगदान केवल दर्शन तक सीमित नहीं था। उन्होंने भारतीय समाज को सांस्कृतिक और धार्मिक एकता का संदेश दिया। उस समय हिंदू समाज अनेक संप्रदायों में विभाजित था। शैव, वैष्णव, शाक्त, सौर और गाणपत्य परंपराओं में वैचारिक संघर्ष विद्यमान था।

शंकराचार्य ने 'षण्मत' सिद्धांत के माध्यम से इन सभी संप्रदायों को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया। उन्होंने स्पष्ट किया कि सभी देवता उसी परम ब्रह्म के विभिन्न रूप हैं। यह दृष्टि भारतीय संस्कृति की समन्वयवादी चेतना को प्रकट करती है (दासगुप्ता, पृ. 130)। उन्होंने भारत के चारों दिशाओं में चार मठ स्थापित किए—श्रृंगेरी, द्वारका, पुरी और ज्योतिर्मठ। इन मठों के माध्यम से उन्होंने भारतीय सांस्कृतिक एकता को स्थायी स्वरूप प्रदान किया - "सर्वं खल्विदं ब्रह्म।" (छांदोग्य उपनिषद, 3.14.1) यह उपनिषद् वाक्य शंकराचार्य के अद्वैत सिद्धांत की मूल भावना को प्रकट करता है। उनके अनुसार संपूर्ण जगत ब्रह्मस्वरूप है। इसलिए मानवता, करुणा और समन्वय भारतीय संस्कृति का आधार होना चाहिए।

शंकराचार्य और योग-साधना

आदिगुरु शंकराचार्य ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की। उनके प्रमुख ग्रंथ हैं— विवेकचूड़ामणि, आत्मबोध, उपदेशसाहस्री, ब्रह्मसूत्र भाष्य, भगवद्गीता भाष्य, निर्वाणषटकम् । इन ग्रंथों में योग, ज्ञान और आत्मसाक्षात्कार का अत्यंत गंभीर विवेचन मिलता है। विवेकचूड़ामणि में उन्होंने साधक के लिए विवेक, वैराग्य, शम, दम और समाधि को आवश्यक बताया है। आत्मबोध में उन्होंने आत्मज्ञान की प्रक्रिया को सरल भाषा में समझाया है। योगतारावली में शंकराचार्य ने "नादानुसंधान" को अत्यंत महत्वपूर्ण साधना माना है—

"नादानुसंधानसमाधिमेकं
मन्यामहे मान्यतमं लयानाम्।" (योगतारावली- 2)

अर्थात "नाद" का अर्थ आंतरिक आध्यात्मिक ध्वनि से है। शंकराचार्य के अनुसार जब साधक प्राणशक्ति को नियंत्रित कर चित्त को भीतर केंद्रित करता है, तब अनाहत नाद का अनुभव होता है। यह नाद साधक को समाधि की ओर ले जाता है। आधुनिक मनोविज्ञान में जिस आंतरिक एकाग्रता और चेतन-अवस्था की चर्चा की जाती है, उसका सूक्ष्म आध्यात्मिक स्वरूप यहाँ दिखाई देता है।

योगतारावली में शंकराचार्य ने प्राणायाम और नाड़ीशोधन की अत्यंत सूक्ष्म व्याख्या की है—

"सरेचपूरैरनिलस्य कुम्भैः

सर्वासु नाडीषु विशोधितासु।" (योगतारावली- 3)

अर्थात वे रेचक, पूरक और कुम्भक के माध्यम से नाड़ियों की शुद्धि का वर्णन करते हैं। उनके अनुसार जब साधक की नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं, तब उसके भीतर अनाहत नाद प्रकट होता है। यह स्थिति योग की आंतरिक प्रगति का संकेत है।

शंकराचार्य ने योग में "बन्धत्रय"—जालंधर बन्ध, मूलबन्ध और उड्डीयान बन्ध—का विशेष महत्व बताया है—

"जालन्धरोड्याणनमूलबन्धान्

जल्पन्ति कण्ठोदरपायुमूलान्।" (योगतारावली- 5)

अर्थात इन बन्धों के अभ्यास से साधक प्राणशक्ति को नियंत्रित कर मृत्यु के भय से भी ऊपर उठ सकता है। यह केवल शारीरिक नियंत्रण नहीं, बल्कि जीवन-ऊर्जा के आध्यात्मिक रूपांतरण की प्रक्रिया है।

शंकराचार्य ने कुंडलिनी जागरण का भी अत्यंत गंभीर विवेचन किया है—

"ओड्याणजालन्धरमूलबन्धै

रुन्निद्रितायामुरगाङ्गनायाम्।" (योगतारावली- 6)

"उरगाङ्गना" से आशय कुंडलिनी शक्ति से है। उनके अनुसार बन्धों और प्राणायाम के माध्यम से जब कुंडलिनी जागृत होती है, तब प्राण सुषुम्ना मार्ग में प्रवाहित होने लगता है। यही अवस्था साधक को उच्च चेतना की ओर ले जाती है। वे कहते हैं—

"संतापिताच्चन्द्रमसः पतन्तीं

पीयूषधारां पिबतीह धन्यः।" (योगतारावली- 7)

अर्थात "पीयूषधारा" अमृततत्त्व का प्रतीक है। योगदृष्टि से यह सहस्रार से प्रवाहित होने वाली दिव्य चेतना का संकेत है। शंकराचार्य के अनुसार यही अवस्था योगी को अमृतत्व का अनुभव कराती है। "केवल कुम्भक" को योग की अत्यंत उच्च अवस्था माना गया है—

"सहस्रशः सन्तु हठेषु कुम्भाः

संभाव्यते केवलकुम्भ एव।" (योगतारावली- 10)

अर्थात शंकराचार्य स्पष्ट करते हैं कि अनेक प्रकार के हठयोगीय कुम्भकों की अपेक्षा केवल कुम्भक श्रेष्ठ है। इस अवस्था में श्वास स्वतः स्थिर हो जाता है और चित्त पूर्णतः अंतर्मुख हो जाता है। यह अवस्था योग और ध्यान की चरम परिणति है। वे कहते हैं—

"न दृष्टिलक्ष्याणि न चित्तबन्धो

न देशकालौ न च वायुरोधः।" (योगतारावली- 14)

उनकी कृति प्रपंचसारतन्त्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसमें ज्योतिष, नक्षत्र, ग्रह और साधना का उल्लेख मिलता है। उन्होंने 12 राशियों, 27 नक्षत्रों और नौ ग्रहों का वर्णन करते हुए प्रकृति और मानव जीवन के गहरे संबंध को

स्पष्ट किया। उन्होंने यह भी कहा कि व्यक्ति को अपने नक्षत्र से संबंधित वृक्ष का संरक्षण करना चाहिए तथा उसके नीचे बैठकर साधना करनी चाहिए। यह दृष्टि भारतीय संस्कृति में पर्यावरणीय चेतना और आध्यात्मिकता के अद्भुत समन्वय को प्रकट करती है।

आधुनिक युग में शंकराचार्य और योग की प्रासंगिकता

वर्तमान युग भौतिकता, उपभोक्तावाद और मानसिक तनाव का युग है। मनुष्य बाहरी उपलब्धियों के पीछे भागते हुए अपने आंतरिक अस्तित्व से दूर होता जा रहा है। ऐसी परिस्थिति में आदिगुरु शंकराचार्य का योग-दर्शन अत्यंत प्रासंगिक हो उठता है।

योगतारावली में वर्णित योग केवल शरीर को स्वस्थ रखने की विधि नहीं है, बल्कि चित्त की शुद्धि और आत्मचेतना की जागृति का मार्ग है। आधुनिक मनुष्य का सबसे बड़ा संकट मानसिक अस्थिरता है। शंकराचार्य ने संकल्प-विकल्प से मुक्त मन की आवश्यकता पर बल दिया—

"प्रसह्य संकल्पपरंपराणां
संभेदने संततसावधानम्।" (योगतारावली, - 20)

उन्होंने मनुष्य को यह शिक्षा दी कि वास्तविक सुख बाह्य वस्तुओं में नहीं, बल्कि आत्मचेतना में निहित है। ध्यान और आत्मचिंतन के माध्यम से मनुष्य मानसिक शांति प्राप्त कर सकता है। आधुनिक विज्ञान और मनोविज्ञान भी ध्यान और योग की उपयोगिता को स्वीकार कर चुके हैं। हालाँकि यह कटु सत्य है कि, आज का मनुष्य बाह्य संसार में इतना उलझ गया है कि उसका मन निरंतर अशांत रहता है। शंकराचार्य ने इसी मानसिक व्यग्रता के समाधान के रूप में "अमनस्कता" अथवा "मनोन्मनी" की अवस्था का प्रतिपादन किया—

"आविर्भवन्तीममनस्कमुद्रा
मालोकयामो मुनिपुंगवानाम्।" (योगतारावली- 21)

यह अमनस्कता पलायन नहीं, बल्कि चित्त की उच्चतम एकाग्रता और स्थिरता है।

शंकराचार्य का अद्वैत सिद्धांत वैश्विक मानवता के लिए भी महत्वपूर्ण है। यह सिद्धांत मानव को जाति, धर्म और संप्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठाकर सार्वभौमिक चेतना की अनुभूति कराता है। उनका योग-दर्शन केवल व्यक्तिगत मुक्ति का मार्ग नहीं, बल्कि सामाजिक और वैश्विक समरसता का आधार भी है।

शंकराचार्य का दार्शनिक एवं साहित्यिक योगदान

आदिगुरु शंकराचार्य का भारतीय दर्शन और साहित्य में योगदान अत्यंत व्यापक, गहन तथा युगान्तरकारी है। उन्होंने केवल अद्वैत वेदांत का प्रतिपादन नहीं किया, बल्कि भारतीय वैदिक परंपरा को पुनः जीवंत करने का महान कार्य किया। उनके आगमन के पूर्व भारतीय समाज धार्मिक विभाजन, कर्मकाण्डीय जड़ता तथा दार्शनिक भ्रम की स्थिति से गुजर रहा था। बौद्ध दर्शन के प्रभाव तथा मीमांसक कर्मवाद के कारण आत्मज्ञान और उपनिषदों की आध्यात्मिक चेतना सामान्य जनजीवन से दूर होती जा रही थी। ऐसे समय में शंकराचार्य ने उपनिषदों, भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करके वेदांत दर्शन को पुनः प्रतिष्ठित किया।

भारतीय दर्शन में शंकराचार्य की विशिष्टता इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने दर्शन को आत्मानुभूति और आध्यात्मिक साधना से जोड़ा। उनके अनुसार दर्शन का उद्देश्य केवल तर्क प्रस्तुत करना नहीं, बल्कि मनुष्य को आत्मसाक्षात्कार की दिशा में प्रेरित करना है। यही कारण है कि उनके ग्रंथों में दार्शनिक गाम्भीर्य के साथ आध्यात्मिक अनुभूति का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है।

उनकी प्रमुख रचनाओं में *ब्रह्मसूत्र भाष्य, भगवद्गीता भाष्य, उपनिषद भाष्य, विवेकचूड़ामणि, आत्मबोध, उपदेशसाहस्री, अपरोक्षानुभूति, दृग्दृश्य विवेक* तथा *आनन्दलहरी* विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन ग्रंथों में आत्मा, ब्रह्म, माया, मोक्ष और योग का अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण मिलता है-**"चित्तस्य शुद्धये कर्म न तु वस्तूपलब्धये।"** (*विवेकचूड़ामणि*,- 11) अर्थात कर्म का उद्देश्य केवल चित्त की शुद्धि है; परम सत्य की प्राप्ति केवल ज्ञान से संभव है। यह विचार उनके योग-दर्शन का मूल आधार है; जिसका अंतिम लक्ष्य आत्मज्ञान है।

उनके साहित्य में केवल दार्शनिक कठोरता ही नहीं, बल्कि काव्यात्मक सौंदर्य भी विद्यमान है। *भज गोविन्दम्* जैसी रचनाओं में उन्होंने सरल भाषा में वैराग्य, विवेक और आध्यात्मिक चेतना का संदेश दिया। **"भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।"** (*भज गोविन्दम्*,- 1) अर्थात मनुष्य को सांसारिक मोह से ऊपर उठकर ईश्वर और आत्मज्ञान की ओर उन्मुख होना चाहिए।

शंकराचार्य के दार्शनिक चिंतन का प्रभाव विश्वदर्शन पर भी पड़ा। पश्चिमी विद्वानों ने भी उनके चिंतन को उच्चकोटि का दार्शनिक प्रतिपादन माना है। डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने उन्हें भारतीय दर्शन की सर्वोच्च प्रतिभाओं में एक माना है (राधाकृष्णन, पृ. 441)। उन्होंने वेदांत को ऐसी तार्किक और वैज्ञानिक व्याख्या प्रदान की, जिसने भारतीय दर्शन को वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित किया। उनके चिंतन में तर्क, अध्यात्म और अनुभूति का जो समन्वय दिखाई देता है, वह उन्हें विश्व के महान दार्शनिकों की श्रेणी में स्थापित करता है।

शंकराचार्य का सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरण

आदिगुरु शंकराचार्य केवल दार्शनिक नहीं थे, बल्कि महान सामाजिक एवं धार्मिक पुनर्जागरणकर्ता भी थे। उन्होंने उस समय भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बाँधने का प्रयास किया, जब समाज विभिन्न संप्रदायों और मतों में विभाजित था। उन्होंने शैव, वैष्णव, शाक्त, गाणपत्य तथा सौर परंपराओं के मध्य समन्वय स्थापित करते हुए 'पंचदेव उपासना' का प्रतिपादन किया। उनके अनुसार सभी देवता उसी परम ब्रह्म के विविध रूप हैं। इस प्रकार उन्होंने धार्मिक संघर्षों को समाप्त कर समन्वयवादी दृष्टि को विकसित किया।

शंकराचार्य ने भारत के चारों दिशाओं में चार प्रमुख मठों की स्थापना की—

- श्रृंगेरी शारदा पीठ (दक्षिण)
- द्वारका शारदा पीठ (पश्चिम)
- गोवर्धन मठ, पुरी (पूर्व)
- ज्योतिर्मठ, बद्रीनाथ (उत्तर)

इन मठों का उद्देश्य केवल धार्मिक शिक्षा देना नहीं था, बल्कि भारतीय संस्कृति की एकात्म चेतना को बनाए रखना भी था। उन्होंने दशनामी संन्यास परंपरा की स्थापना कर संन्यासियों को संगठित स्वरूप प्रदान किया। यह संगठन भारतीय धर्म और संस्कृति की रक्षा में अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

उनके सामाजिक चिंतन का मूल आधार अद्वैत था। जब समस्त जगत को ब्रह्मस्वरूप माना जाता है, तब जाति, संप्रदाय और बाह्य भेद गौण हो जाते हैं। यही कारण है कि उनका दर्शन मानवता, समानता और आध्यात्मिक एकता का संदेश देता है- **"यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।"** (*उपनिषद् परंपरा*)

अर्थात् जहाँ समस्त विश्व एक ही निवास के समान प्रतीत हो, वही वास्तविक आध्यात्मिक दृष्टि है। शंकराचार्य का समस्त जीवन इसी सार्वभौमिक चेतना का प्रतीक था।

उन्होंने भारत में कुंभ परंपरा और अखाड़ा व्यवस्था को भी सुदृढ़ किया। नागा संन्यासियों और दशनामी परंपरा के माध्यम से उन्होंने वैदिक धर्म की सुरक्षा और संगठन को नई दिशा प्रदान की।

धार्मिक पुनर्जागरण के साथ-साथ उन्होंने लोकमंगल की भावना को भी महत्व दिया। यद्यपि वे ज्ञानमार्ग के समर्थक थे, फिर भी उनका सम्पूर्ण जीवन निष्काम कर्म और लोकसंग्रह के लिए समर्पित रहा। इस दृष्टि से उनका व्यक्तित्व गीता के कर्मयोग और वेदांत के ज्ञानयोग का अद्भुत समन्वय प्रस्तुत करता है।

निष्कर्ष

निश्चित ही आदिगुरु शंकराचार्य भारतीय दर्शन, अध्यात्म और योग परंपरा के महान प्रवर्तक थे। उन्होंने अद्वैत वेदांत के माध्यम से आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया तथा ज्ञानयोग को मोक्ष का सर्वोच्च साधन माना। उनका चिंतन व्यावहारिक जीवन के लिए भी अत्यंत उपयोगी है। उन्होंने भारतीय समाज को सांस्कृतिक एकता, धार्मिक समन्वय और आध्यात्मिक जागरण का संदेश दिया। उनके द्वारा स्थापित मठ आज भी भारतीय संस्कृति और वेदांत परंपरा के प्रमुख केंद्र हैं।

योग के माध्यम से उन्होंने मानव को आत्मसाक्षात्कार और आंतरिक शांति का मार्ग दिखाया। वर्तमान युग में उनका दर्शन मानसिक तनाव, सांस्कृतिक विभाजन और आध्यात्मिक शून्यता से ग्रस्त मानवता के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

इस प्रकार आदिगुरु शंकराचार्य का योग-दर्शन भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, जो आने वाली पीढ़ियों को सदैव प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

सन्दर्भ सूची

- राधाकृष्णन, एस. (1998) भारतीय दर्शन, भाग-1 : नई दिल्ली, राजपाल एंड संस।
- दासगुप्ता, सुरेन्द्रनाथ (2002) भारतीय दर्शन का इतिहास : दिल्ली मोतीलाल बनारसीदास।
- शर्मा, चन्द्रधर (2011) : भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन : दिल्ली विश्वविद्यालय प्रकाशन।
- स्वामी निखिलानंद (2003). विवेकानंद : एक जीवनी : कोलकाता, अद्वैत आश्रम।
- स्वामी तेजसानंद (2003) : स्वामी विवेकानन्द का संक्षिप्त जीवन : कोलकाता, रामकृष्ण मठ।
- द वर्क्स ऑफ श्रीशंकराचार्य : (योगतारावली) वाल्यू 16, श्रीवास्तव विलास प्रैस श्रीरंगम।
- शंकराचार्य विवेकचूड़ामणि : गोरखपुर, गीता प्रेस, श्लोक 20-32।
- शंकराचार्य आत्मबोध. गोरखपुर: गीता प्रेस, श्लोक 1-12।
- शंकराचार्य निर्वाणषटकम् : वाराणसी, चौखम्बा प्रकाशन।
- शंकराचार्य भगवद्गीता भाष्य : गोरखपुर, गीता प्रेस।
- पतंजलि योगसूत्र : गोरखपुर, गीता प्रेस, सूत्र ½।
- छांदोग्य उपनिषद : गोरखपुर, गीता प्रेस, 3.14.1।
- बृहदारण्यक उपनिषद : गोरखपुर, गीता प्रेस, 1.4.10।